शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : रामजी माणेकचंद दोशी वकील 卐

फरवरी : १९६१ ☆ वर्ष सोलहवाँ, माघ, वीर नि०सं० २४८६ ☆ अंक : १०

मनुष्य शरीर की कृतार्थता

यह दुर्लभ मनुष्य शरीर पूर्वकाल में अनंतबार प्राप्त होने पर भी कोई सफलता नहीं हुई; किन्तु इस मनुष्य-शरीर की कृतार्थता है कि जिस शरीर से इस जीव ने ज्ञानी पुरुष को पहिचाना, तथा उन महाभाग्य का आश्रय लिया। जिन पुरुष के आश्रय से अनेक प्रकार के मिथ्या आग्रह आदि की मन्दता हुई, उन पुरुष की शरण में यह शरीर छूटे यही सार्थक है। जन्म-जरा-मरणादि को नाश करनेवाला आत्मज्ञान जिनमें वर्तता है, उन पुरुष का आश्रय ही जीव के जन्म-जरा-मरणादि का नाश कर सकता है, क्योंकि वह यथा संभव उपाय है....।

—(श्रीमद् राजचन्द्र; वर्ष २१वाँ)

वार्षिक मूल्य
तीन रुपया

[१९०]

एक अंक
चार आना

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुक्ति का मार्ग (दूसरी आवृत्ति)

जिसमें सभी जिज्ञासुओं को समझने में सुगम शैली है। हित के मार्ग में प्रवेश करनेवालों को प्रथम किस-किस बात का ज्ञान जरूरी है। वह बात मुख्यरूप से है—थोक लेकर प्रचार कीजिये पृ० संख्या १०२, मूल्य ५० नया पैसा।

★

श्री जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तरमाला

तीसरा भाग (दूसरी आवृत्ति)

प्रेस में छपना चालू है, १ सप्ताह में तैयार हो जावेगी।

★

स्व० दौलतरामजी कृत

छहढाला की

विस्तृत टीका

छहढाला की ऐसी विस्तृत स्पष्ट टीका अभी तक नहीं छपी। जिज्ञासुओं के मनन करने योग्य टीका है, छप रही है, पूर्ण होते ही सूचित किया जावेगा।

★

समयसार प्रवचन

प्रथम भाग (दूसरी आवृत्ति)

जो कि कुछ दिनों से अप्राप्य हो रहा था, वह प्रेस में छपने दे दिया गया है, जो कि उत्तम ढंग से संशोधन पूर्वक शीघ्र ही प्रकाशित होगा। मूल्य भी कम रखा जावेगा।

श्री दि० जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट

पो० सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

★

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : रामजी माणेकचंद दोशी वकील 卐

फरवरी : १९६१ ☆ वर्ष सोलहवाँ, माघ, वीर नि०सं० २४८६ ☆ अंक : १०

हे जीव!

श्रद्धाग्नि द्वारा भ्रान्ति को भस्म करके शान्ति प्रगट कर....

[फतेहपुर में पूज्य गुरुदेव का प्रवचन]

(वैशाख शुक्ला १, वीर सं० २४८५)

यह शरीर तो अजीवतत्त्व है, वह परमाणु के संयोग से निर्मित है। आत्मा, शरीर से भिन्न अनादि-अनंत स्वतंत्र तत्त्व है, वह ज्ञान-आनन्द से परिपूर्ण है; किन्तु उसके भान बिना आत्मा संसार में जन्म-मरण करके दु:खी हो रहा है। ऐसे जीवों को आत्मा की शांति का सच्चा मार्ग बतलाने के लिये आचार्यदेव ने इस 'पद्मनन्दि पच्चीसी' शास्त्र की रचना की है। उसमें वे कहते हैं कि—अरे जीव! तूने अपने स्वरूप का सच्चा मनन कभी नहीं किया। अनंत काल के परिभ्रमण-प्रवाह में तू अनंत बार देव और नारकी हुआ, राजा और रंक भी हुआ, तूने पुण्य भी किये और पाप भी किये, किन्तु सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा स्वयं कौन है, उसका लक्ष कभी एक क्षण भी नहीं किया। चैतन्य को चूककर तूने लक्ष्मी, शरीरादि बाह्य वस्तुओं में सुख की कल्पना की है; बाह्य वस्तु में कभी सुख नहीं है। तेरा सुख तेरी प्रभुता में है; किन्तु अपनी प्रभुता को चूककर तूने अपने अज्ञान से ही अनन्त दु:ख प्राप्त किये हैं।

जे स्वरूप समज्या बिना, पाम्यो दु:ख अनन्त,
समजाव्युं ते पद नमुं, श्री सद्गुरु भगवंत॥

मैं पर का कर्ता और पर में मेरा सुख; पर मुझे सुख-दु:ख दे सकता है; इसप्रकार अज्ञान से विकल्पजाल रचकर उस जाल में जीव फँस रहा है; अपने कल्पनाजाल से स्वयं दु:खी हो रहा है।

हे जीव! यदि तुझे शांति की आवश्यकता हो, आनन्द का अनुभव करना हो, तो आचार्य भगवान कहते हैं कि—अपने निर्दोष चैतन्यस्वरूप को लक्ष में लेकर उसका चिंतन कर। तेरे आत्मा में सिद्ध भगवान जितनी परिपूर्ण शक्ति भरी हुई है; उसके सन्मुख होकर उसका आदर कर... और विभाव का आदर छोड़... संयोगों में सुखबुद्धि छोड़। परवस्तु से तेरी महिमा नहीं है; क्षणिक पुण्य-पाप की वृत्ति से तेरी महिमा नहीं है; अखण्ड ज्ञानानन्दस्वभाव परिपूर्ण सामर्थ्य से भरपूर निर्दोष है—उसी से तेरी महिमा है, इसलिये उसका आदर कर; उसकी रुचि-विश्वास कर; उसमें अंतर्मुख होने से तुझे अपनी अपूर्व शांति एवं आनन्द का वेदन होगा।

जो क्रोधादि की क्षणिक वृत्तियाँ होती हैं, उनके पीछे उसी समय शांत स्वभाव तुझमें भरा है, उसे तू लक्ष में ले। यदि शांति, स्वभाव न हो तो उसकी विकृतिरूप क्रोध भी न हो। लकड़ी में शांति स्वभाव नहीं है तो उसकी विकृतिरूप क्रोध भी नहीं है। इसलिये क्रोधादि क्षणिक विभाव के समय, उतना ही आत्मा को न मानकर, त्रिकाली शांति से भरपूर अपने ज्ञानानन्दस्वभाव को लक्ष में लेकर उसका आदर कर.... उस स्वभाव का आदर करने से विभाव का आदर छूट जायेगा... विभाव का आदर छूट जाने के पश्चात् वह अधिक काल तक नहीं टिक सकेगा। जैसी भावना, वैसा भवन, अर्थात् जिसे विकार की भावना हो, वह विकार को ही प्राप्त होता है और जिसे ज्ञानानन्दस्वभाव की भावना हो, उसे उसकी प्राप्ति होती ही है। ज्ञानानन्द तो अपना स्वभाव ही है, अपनी वस्तु की प्राप्ति अपने को न हो, यह कैसे हो सकता है? किन्तु उसके लिये अंतर्मुख होकर, स्ववस्तु को लक्ष में लेकर उसकी भावना करनी चाहिये? जीव ने अनादि से बहिर्मुखबुद्धि के कारण परभावों की ही भावना की है, किन्तु अंतर्मुख होकर कभी स्वभाव की भावना नहीं भायी। भगवान कुन्दकुन्दस्वामी कहते हैं कि—

मिथ्यात्व-आदिक भावने चिरकाल भाव्या छे जीवे,
सम्यक्त्व-आदिक भाव रे! भाव्या नथी पूर्वे जीवे।

अरे जीवों! पूर्वकाल में जिसे कभी नहीं भाया—ऐसी स्वभाव भावना अब भाओ! चिदानंदस्वरूप की भावना से सम्यक्त्वादि रत्नत्रय प्रगट होकर उनके द्वारा तुम्हारे भव का अंत आ जायेगा। हे जीवो! तुमने भववृद्धि की भावना तो अभी तक भायी; अब भव को छेदनेवाली भावना भाओ! जगत में सबसे अधिक शक्तिमान ऐसा तुम्हारा स्वभाव ही है, उस स्वभाव की भावना करो। इस जगत के ठाटबाट और संयोग तो चार दिन की चाँदनी समान हैं, वे तो क्षणभर में विलीन हो

जायेंगे; उनमें से कोई भी तुम्हें शरणभूत नहीं है, तुम्हारा ज्ञानानन्दस्वभाव ही एक शरणभूत है, इसलिये उसका विश्वास करके उसी की शरण लो! यह शरीर भी तुम्हें शरणरूप नहीं होगा, एक क्षण भी वह तुम्हारे रोकने से नहीं रुकेगा और एक डग भी साथ नहीं चलेगा। तुम्हारा चिदानन्द -स्वभाव सदा तुम्हारे साथ रहनेवाला है और वही तुम्हें शरणभूत है।

जिसप्रकार वन में अग्नि लगने से वृक्षादि जलकर राख हो जाते हैं; उसीप्रकार हे जीव, चिदानन्दस्वभाव की श्रद्धारूपी ऐसी अग्नि प्रगट कर कि भ्रान्ति भस्म हो जाये... पुनः कभी आत्मस्वरूप में भ्रान्ति न पड़े। अंतर्मुख श्रद्धा द्वारा चैतन्यज्योति प्रगट होने से भ्रान्ति और कर्म जलकर राख हो जाते हैं, यही आत्मिक शांति का उपाय है। परपदार्थ के बिना आत्मा स्वयं अकेला ही अपने आनन्द का अनुभव कर सकता है। दुःख का आघात होने पर शरीर छोड़कर भी उस दुःख से मुक्त होना चाहता है और सुखी होने की इच्छा रखता है; इसलिये उसमें अव्यक्तरूप से इस बात की स्वीकृति आ जाती है कि—शरीर के बिना भी आत्मा अकेला अपने से सुखी हो सकता है। आत्मा का सुख शरीर में या बाह्य विषयों में नहीं है; आत्मा का सुख आत्मा में ही है। जिसप्रकार शरीर के बिना आत्मा सुखी रह सकता है, उसीप्रकार राग के बिना भी सुखी रह सकता है।—इसप्रकार शरीर से भिन्न ऐसे अपने ज्ञानानन्दस्वभाव को लक्ष में लेकर उसकी प्रतीति द्वारा ऐसी श्रद्धा—ज्योति प्रगट कर जिसमें भ्रान्ति जलकर भस्म हो जाये और अपूर्व आत्मशांति प्रगट हो।

केवलज्ञान के साथ श्रुतज्ञान की अपूर्व संधि

[निजघर में वास करना ही वास्तु-मुहूर्त है]

(श्रुत-पंचमी के दिन सेठ मगनलाल सुन्दरजी के मकान के
वास्तु के अवसर पर पूज्य गुरुदेव के प्रवचन से)

आत्मा आनन्दस्वरूप सर्वज्ञस्वभावी है, उसके स्वभाव का यथार्थ ज्ञान, वह आनन्दानुभव का कारण है।

आत्मा का वास्तविक ज्ञान अर्थात् भावश्रुतज्ञान, वह अनाकुल आनन्दरूप है। आज श्रुतपंचमी है। भगवान की परम्परा से आया हुआ जो श्रुतज्ञान सुरक्षित रहा, उसमें से पुष्पदन्त-भूतबलि आचार्यों ने षट्खण्ड-आगम की रचना की और उसका महोत्सव मनाकर चतुर्विध संघ ने श्रुतज्ञान का बहुमान किया; इसप्रकार आज श्रुतज्ञान की आराधना का महान दिवस है।

श्रुतज्ञान की आराधना किसप्रकार होती है ? उसकी यह बात है। श्रुतज्ञानकथित आत्मा का जो परम शुद्धस्वभाव, उस ओर उन्मुख होकर भावश्रुत से आत्मा को जानना-अनुभवन करना, वह श्रुतज्ञान की आराधना है और ऐसे शुद्धात्मस्वभावरूपी निजघर में वास करना, वह परमार्थ 'वास्तु-मुहूर्त' है। निजगृह में प्रवेश करके उसी में रहने का नाम वास्तु-मुहूर्त है। अनादिकाल से परभावरूपी परगृह में वास किया है, वहाँ से हटकर जो निजगृह में आकर रहने लगा, उसने अपूर्व वास्तु-मुहूर्त किया है। वह मंगल है, तथा केवलज्ञान और पूर्ण आनन्द का कारण है।

यहाँ केवलज्ञान की महिमा बतलाई जा रही है। परम प्रत्यक्ष ऐसा केवलज्ञान अनाकुल है—आनन्दरूप है और साधक को भावश्रुतज्ञान भी स्वसंवेदन-प्रत्यक्ष है, तथा वह भी अनाकुल और आनन्दरूप है।

—केवलज्ञान परम प्रत्यक्ष है।

—साधक का श्रुतज्ञान स्वंसवेदन प्रत्यक्ष है।

—वे दोनों आनन्दस्वरूप हैं।

—वे दोनों मंगलस्वरूप हैं।

—उन दोनों में पद-पद पर मंगल है।

जिसने निजस्वरूप की प्रतीति करके भावश्रुत से उसमें प्रवेश किया, उसने असंख्यप्रदेशी निजगृह में वास्तु-मुहूर्त किया है; अब उसे पद-पद पर (पर्याय-पर्याय में) आनन्द-मंगल की वृद्धि है।

अहा! संतों ने केवलज्ञान और भावश्रुतज्ञान की संधि करके जगत को भव्य जीवों को आनन्द की भेंट दी है। केवलज्ञान अर्थात् देवस्वरूप; केवलज्ञान अर्थात् दिव्यस्वरूप; केवलज्ञान अर्थात् अरहंत का स्वरूप; उसकी अचिंत्य महिमा है। उसका निर्णय होने पर आनन्द का अनुभव होता है, साधकभाव के अंकुर फूटते हैं।

केवलज्ञान का विस्तार कितना?—केवलज्ञान रहता तो है असंख्य आत्मप्रदेश में, किन्तु उसकी सर्वशक्ति विकसित हो गई है, इसलिये अपनी दिव्य प्रभुता द्वारा वह सर्व ज्ञेयों में व्याप्त होकर रहता है अर्थात् सर्व ज्ञेयों को जान लेता है; इसलिये उसे किसी प्रकार की आकुलता, कुतूहल या इच्छा नहीं रही है।

देखो, यह चैतन्य का पानी! जिसप्रकार नारियल में मीठा पानी भरा है, उसीप्रकार आत्मा में आनन्दमय चैतन्य रस भरा है। उसके स्वाद के समक्ष जगत के सभी रस फीके लगते है। पर में सुख नहीं है; जो सुखाभास होता है, वह तो मात्र कल्पना है; वह कल्पना भी विरूप है; वह चैतन्य का रूप नहीं है। चैतन्य का रूप तो शांत अनाकुल है, वह स्वयं निराकुल आनन्दस्वरूप है।

जिसे ऐसे आनन्दस्वरूप आत्मा का भान नहीं है, वह राजपाट में या स्वर्ग में हो, तथापि उसे एकान्त आकुलता का ही वेदन होता है—अर्थात् दु:ख का ही अनुभव होता है। ज्ञानी-धर्मात्मा को चैतन्य के अनाकुल आनन्द का वेदन होता है; अंशत: राग-द्वेष होता है, किन्तु उसमें या पर में सुख बुद्धि नहीं है।—इसप्रकार साधक को अंशत: आनन्द है और पूर्णज्ञान को प्राप्त केवलज्ञानी भगवान को तो पूर्ण आनन्द है—मात्र आनन्द है।

देखो, आज श्रुतपंचमी के महान दिवस पर आत्मा के आनन्द की बात आई है। केवलज्ञान स्वयं मंगलरूप और आनन्दरूप है, तथा उसके स्वरूप का निर्णय करनेवाला श्रुतज्ञान भी अंशत: मंगलरूप और आनन्दरूप है।

संतों ने आत्मा में आनन्द का मंगल स्वस्तिक पूरा है। जिसप्रकार किसी महापुरुष के आगमन पर आँगन में स्वस्तिक पूरते हैं, उसीप्रकार महान ऐसा केवलज्ञान आत्मा के आँगन में आ रहा है—अल्पकाल में ही केवलज्ञान प्राप्त करना है, उसी तैयारी में संतों ने भावश्रुतज्ञान से आत्मा में स्वस्तिक पूरा है।

''कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र साथिया अमृते पूर्या;
ग्रन्थाधिराज तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या॥''

चैतन्य की सर्वज्ञता जगत के समस्त भावों को पी गई है.... उसने ब्रह्मांड के समस्त भावों को जान लिया है। ऐसे चैतन्य की परम महत्ता संतों ने शास्त्रों में भरी है। कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने 'समयसार' की रचना की है और अमृतचन्द्राचार्यदेव ने टीका द्वारा महान गम्भीर भावों को खोलकर स्वस्तिक पूरा..... उन भावों को जिसने जाना, उसके आत्मा में सम्यग्दर्शन का मंगल-स्वस्तिक अंकित हो गया।

देखो, यह चैतन्य-महल में प्रवेश करने का वास्तु-मुहूर्त! अनादिकालीन अज्ञानदशा के कारण आत्मा में राग की गन्ध आ रही थी; अब यथार्थ ज्ञान द्वारा जिसने आत्मा में से राग की वह गन्ध निकाल दी और केवलज्ञान का प्रविष्ट किया उसने सच्चा वास्तु-मुहूर्त किया है; वह अल्पकाल में केवलज्ञान प्राप्त करके सिद्ध भगवन्तों की नगरी में जाकर सादि-अनंत काल तक निवास करेगा। चैतन्य के निजगृह में निवास किया सो किया.... अब कभी वहाँ से हटेगा नहीं! —यही सच्चा वास्तु-मुहूर्त है।

सामायिक की आसन (बैठने की चटाई) कौन सी है?—तो कहते हैं कि असंख्यप्रदेशी चैतन्यक्षेत्र ही सामायिक की आसन है; उस चैतन्य-क्षेत्र में बैठकर ही सामायिक की जाती है; राग में या जड़ में बैठने से सामायिक नहीं होती। जड़ से पार और राग से दूर होकर चैतन्यस्वभाव में स्थिर बैठने से सामायिक होती है। सामायिक में धर्मात्मा को आत्मा ही समीप है; जो राग से दूर तथा आत्मा के समीप वर्तता है, उसी को सामायिक होती है।

सिद्धसमान स्वपद को जो नहीं जानता और सिद्ध में तथा अपने स्वरूप में परमार्थतः जो अंतर मानता है, वह जीव, सिद्ध की समीपता से दूर हटकर संसार के समीप रहता है; वह मूढ़-मिथ्यादृष्टि है।

'भगवान सर्वज्ञ हैं, भगवान को पूर्ण आनन्द है; भगवान परम वीतराग हैं'—ऐसा कहे, परन्तु 'जैसे भगवान वैसा ही मैं, भगवान के और मेरे स्वभाव में परमार्थतः कोई अंतर नहीं है'—इसप्रकार स्वयं साथ मिलकर जब तक निर्णय न करे, तब तक भगवान के स्वरूप का भी सच्चा निर्णय नहीं होता; और स्वयं ऐसा निर्णय किये बिना अन्य धर्मात्माओं की भी यथार्थ पहिचान नहीं होती। अज्ञानी बाह्य संयोगों को देखकर धर्मी का माप निकालता है किन्तु धर्म के सच्चे स्वरूप

की उसे खबर नहीं है।—इसलिये जिसे धर्मी होना हो, उसे सर्वज्ञ जैसे अपने ज्ञानस्वभाव का श्रुतज्ञान से निर्णय करना चाहिये।—यह निर्णय करना ही धर्म का प्रथम अपूर्व कार्य है। जिसने ऐसा निर्णय किया, उसने अपनी प्रभुता की और पग बढ़ाया है... उसने चैतन्य में स्वस्तिक पूरा है... और निजगृह में वास किया है.... वह अल्पकाल में केवलज्ञान एवं परमानन्द को प्राप्त करेगा।

ज्ञानविद्या का निरंतर अभ्यास करो

श्री समयसार गाथा २०६ पर गुरुदेव का यह प्रवचन श्रावण कृष्णा अष्टमी के दिन पुनः 'टेप-रेकार्डर' पर सुनने को मिला। इस प्रवचन में आत्मा के अनुभव की सरस प्रेरणा मिलती है, इसलिये उस प्रवचन का सार यहाँ दिया जा रहा है। इसे पढ़ने पर ज्ञात होगा कि गुरुदेव के रेकार्डिंग-प्रवचन में भी कितनी मिठास है।

निजपद की प्राप्ति कैसे होती है? पूर्णपद अर्थात् मोक्ष कैसे प्राप्त होता है? वह बात आचार्यदेव समझाते हैं। यह जो ज्ञानस्वरूप निजपद है, वह ज्ञानकला से ही प्राप्त होता है, भेदज्ञानरूप कला के अभ्यास से ही मोक्षपद मिलता है। इसलिये हे जीव! ज्ञानकला द्वारा निजपद के अनुभव का सतत अभ्यास करो। इस ज्ञानकला के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार से मुक्ति प्राप्त नहीं होती है। मोक्षार्थी जीव! राग से और जड़ से पार ऐसे सहजज्ञान की कला द्वारा चिदानन्द निजपद के अनुभव का तुम सतत-निरन्तर प्रयत्न करो। यह ज्ञानकला का अभ्यास ही राग के तथा कर्म के नाश का उपाय है।

अंतर्मुख होकर चिदानन्द भगवान के दर्शन करते ही कर्मरूपी पर्वत के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। हे जीव! तुझे अपने ज्ञानानन्दस्वभाव का अनुभव करना हो तो ज्ञानरूपी विद्यागृह में प्रवेश करके ज्ञानविद्या का अभ्यास कर।

यह उपदेश आचार्यदेव अगली गाथा में देते हैं:—

आमां सदा प्रीतिवंत बन, आमां संतुष्ट ने,
आनाथी बन तुं तृप्त तुजने सुख अहो! उत्तम थशे॥२०६॥

हे भव्य! तुझे सुखी होना हो, निजपद प्राप्त करना हो तो तू इस ज्ञानस्वरूप आत्मा की प्रीति कर।—कितनी प्रीति कर?—तो कहते हैं कि उत्तम प्रीति कर; कब तक?—तो कहते हैं कि निरन्तर! चैतन्य की प्रीति छोड़कर एक क्षण भी राग की प्रीति न कर। निरंतर-सतत तू ज्ञायक-स्वभाव की ही प्रीति कर.... और उसी में संतुष्ट हो। अहो! मेरा सुख, मेरा आनन्द मेरे निजपद में ही है—इसप्रकार तू अपने में ही संतुष्ट हो।

जितना ज्ञानपद है, उतना ही सत्य आत्मस्वरूप है; राग वास्तव में आत्मा का सच्चा स्वरूप नहीं है। जितना ज्ञान है, उतना ही आत्मा है और उतना ही अनुभवनीय है। ज्ञानरूप से अपने आत्मा का अनुभव कर किन्तु रागरूप से अनुभव न कर। राग का अनुभव तो अनादि से कर रहा है किन्तु उसमें संतोष प्राप्त नहीं हुआ—सुख नहीं मिला—धर्म नहीं हुआ। किन्तु यदि इस ज्ञानरूप से आत्मा का अनुभव करे तो उसी क्षण तुझे संतोष होगा—तृप्ति होगी—सुख होगा—धर्म होगा।

मूढ़ लोग बाह्य में अनेक प्रकार की देवियों को माता मानकर उनका भजन-पूजन करते हैं और वे कुछ कल्याण कर देंगी—ऐसी मानकर व्यर्थ ही बर्बाद होते हैं; किन्तु सदा अंतरंग में प्रगट इस आत्मा की यह 'ज्ञान शक्ति' ही सच्ची शक्ति माता है, उस माता का सेवन कर तो अवश्य ही सुख की प्राप्ति होगी। ज्ञानशक्तिरूप माता को पहिचानकर उसकी सेवा कर तो अपूर्व कल्याण होगा। इसलिये हे भव्य! तू अपने ज्ञानस्वरूप आत्मा को पहिचानकर उसकी प्रीति कर, उसमें संतुष्ट हो—उसी में तृप्त हो।—उसका परिणाम क्या आयेगा?—कि तुझे परम सुख का अनुभव होगा।—यही सच्ची सफलता है। ऐसे आत्मा की पहिचान बिना लौकिक शिक्षा की चाहे जितनी डिग्रियाँ (उपाधियाँ) प्राप्त कर ले तो वे सब निष्फल हैं, उनसे सुख प्राप्त नहीं होता। इसलिये जिसे पास होना हो—सफल होना हो—सुखी होना हो, उसे ज्ञान विद्या का सतत अनुभव करना चाहिये।

हे जीव! तुझे आत्मा की प्यास लगी हो; आत्मतृषा जागृत हुई हो, और उसे तृप्त करना चाहता हो तो इस ज्ञानरूपी अमृत का प्रीतिपूर्वक सेवन कर। उसी से तुझे तृप्ति होगी; राग की प्रीति से तृप्ति नहीं हो सकती। राग के सेवन से तो आकुलता और अतृप्ति ही होगी। मुनि—भगवंत चिदानन्दस्वरूप में लीन लोकर आनन्दरस के अनुभव से तृप्त-तृप्त हैं। बाह्य विषयों के सेवन से तृप्ति नहीं होती। राग भी वास्तव में आत्मा नहीं है और न वह अनुभवनीय है; वह तो परायी वस्तु है,

उससे तृप्ति कैसे हो सकती है ? जिसप्रकार—लोक व्यवहार में कहा जाता है कि पैसे से बस वस्तु मिलती है; लेकिन कहीं माँ-बाप पैसे से मिल सकते हैं ?—नहीं मिल सकते; उसीप्रकार चैतन्य सुख का अनुभव क्या राग से हो सकता है ? राग के वेदन से तो आकुलता होती है और बाह्य विषयों का सम्बन्ध प्राप्त होता है; किन्तु आत्मा की तृप्ति उससे कभी नहीं होती। आत्मा की तृप्ति तो विषयातीत है। तुझे ऐसी तृप्ति तथा अतीन्द्रिय सुख का अनुभव करना हो तो तू आत्मा में प्रीति कर, उसमें संतुष्ट होकर स्थिर हो !—ऐसा करने से तुरन्त ही तुझे आत्मा के अचिंत्य सुख का अनुभव होगा। स्वयं ही ऐसे आनन्द की अनुभूति होगी कि दूसरों से पूछना नहीं पड़ेगा। अहा ! भगवान-आत्मा का निजपद ही एक प्रीति करनेयोग्य है, वही अनुभव करनेयोग्य है.... ज्ञानकला द्वारा सतत उसी का अभ्यास करनेयोग्य है। इसलिये हे जीवो ! तुम सतत् रूप से.... निरन्तर उसके अनुभव का अभ्यास करो।

साधक जीव अपने आँगन में
सिद्ध भगवान को पधराता है।

(फतेहपुर में पूज्य गुरुदेव का प्रवचन; वैशाख शुक्ला-२)

साधक जीव को अपने स्वरूप की लगन लगी है; उस स्वरूप लीनता के मण्डप में सिद्ध भगवन्तों को आमंत्रित करता है कि—हे सिद्ध भगवन्तों! मेरी मुक्ति के मांगलिक अवसर पर मेरे आँगन में.... मेरे चैतन्य मण्डप में पधारो... आपके पधारने से मेरे मण्डप की (-मेरे श्रद्धा-ज्ञान की) शोभा में वृद्धि होगी।

सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की क्या रीति है तथा उसकी स्थिति क्या है—यह बात जीव ने कभी प्रीतिपूर्वक नहीं सुनी। ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा है, उसे श्रद्धा-ज्ञान में लिये बिना अन्य किसी उपाय से सम्यग्दर्शन नहीं होता। अनादि-अनन्तकालीन आत्मा, उसका वास्तविक स्वरूप, उसकी विकृत विभावदशा, उसकी साधकदशा, उसकी स्वभावदशा, उसका पर से भिन्नत्व—यह सभी बातें आचार्यदेव ने श्री समयसार में बता दी हैं। जिसप्रकार राजा-महाराजाओं का सारा जीवन

अल्पकालीन नाटक में बता देते हैं, उसीप्रकार आचार्यदेव ने इस समयसाररूपी नाटक में सारे आत्मा का जीवन (अज्ञानदशा, साधकदशा तथा सिद्धदशा में विद्यमान आत्मा का स्वरूप) बतला दिया है।

आत्मा, पर से भिन्न है; इसलिये पर की क्रिया में आत्मा की क्रिया नहीं है; आत्मा की क्रिया आत्मा में है। आत्मा में जो रागादि विभावभाव हैं, वह विकारी क्रिया है; उस क्रिया को अज्ञानी करता है तथा वह क्रिया, संसार का कारण है। ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा का भान करके उसमें लीनतारूप वीतरागी क्रिया, वह स्वभावक्रिया है, वह धर्मक्रिया है, धर्मी जीव उस क्रिया को करता है।

व्यवहार से मैं बँधा हुआ हूँ और निश्चय से बँधा हुआ नहीं हूँ—ऐसे दो नयों सम्बन्धी पक्षपात के विकल्पों में जो जीव अटक रहा है, वह जीव भी विभाव क्रिया में अटका है; तो फिर दूसरे बाह्य विकल्पों की क्या बात? भगवान! अपने चिदानन्दस्वभाव के अवलम्बन बिना तूने चारों गति में घोर दुःख सहन किये.... अज्ञानभाव से तूने जो अनंत दुःख सहे हैं, उनका वर्णन वाणी द्वारा नहीं हो सकता। वे दुःख तूने सहे हैं और केवली भगवान ने उन्हें जाना है। अब राग का पक्ष छोड़कर चिदानन्दस्वभाव का अवलम्बन कर, वही तेरी फतह का मार्ग है। देखो! फतेपुर में फतह होने का मार्ग बतलाया है।

आत्मा आसानी से समझ सके, ऐसी यह बात है। हमारी समझ में नहीं आती, हममें इतनी शक्ति नहीं हे—ऐसा न मानो। प्रत्येक आत्मा केवलज्ञानी की शक्ति का संग्रह करके बैठा है। आत्मा में पूर्ण ज्ञान और आनन्द का सागर लहरा रहा है; उसमें अंतर्मुख होकर अनुभव करना, सो सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग, आत्मध्यान द्वारा ही प्राप्त होता है; राग द्वारा प्राप्त नहीं होता। सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन भी राग के अवलम्बन बिना, शुद्ध आत्मा के निर्विकल्प ध्यान में ही प्रगट होता है और तत्पश्चात् मुनिदशा तो अति अलौकिक है। जिसे ज्ञानस्वरूपी चैतन्यबिम्ब आत्मा से प्रीति लगी हो, उसे तीव्र विषय-कषाय, हिंसा, शिकार, मांसादि भक्षण, मदिरापान, चोरी आदि का भाव तो नहीं होता; परन्तु शुभरागादि की प्रीति भी उसे नहीं होती। अन्य रागों की तो बात ही दूर रही, किन्तु 'मेरा आत्मा शुद्ध चिदानन्द है'—ऐसे विकल्परूप जो राग हैं, उसका प्रेम करके जो उसके पक्ष में—कर्तृत्व में अटकता है, उसे भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। चिदानन्दतत्त्व सर्व विकल्पों से पार है; उसकी साक्षात् अनुभूति से ही सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। इसलिये आचार्यदेव कहते हैं कि:—

अलमलमति जल्पैर्दुर्विकल्पैरनल्पैरयमिह परमार्थश्चेत्यतां नित्यमेकः।
स्वरसविसरपूर्णज्ञानविस्फूर्तिमात्रात् न खलु समयसारातुत्तरं किंचिदस्ति॥२४४॥

बहु कथन से तथा बहु विकल्पों से बस होओ, शब्द और विकल्प से पार होकर परमार्थरूप आत्मा का अनुभव करो। अहा, यह परमार्थरूप आत्मा स्वानुभव में अपने निजरस के विस्तार से पूर्ण ऐसे ज्ञानरूप से स्फुरायमान होता है; ऐसे शुद्धात्मा से ऊँचा अन्य कोई नहीं है, इसलिये उसी का अनुभव करो।

जिसप्रकार विवाह के अवसर पर मित्रों और सगे-सम्बन्धियों को आमंत्रण पत्र लिखते हैं कि—अभी तक हमसे कोई अपराध हुआ हो या आपके मन को कष्ट पहुँचा हो, तो उसे भूल जायें और इस शुभ अवसर पर अवश्य पधारकर मण्डप की शोभा में अभिवृद्धि करें.... ! उसीप्रकार यहाँ साधक धर्मात्मा को अपने स्वरूप की लगन लगी है। वह स्वरूपलीनता के मण्डप में सिद्ध भगवन्तों को आमंत्रित करता है कि—हे सिद्ध भगवन्तों! मेरी मुक्ति का मंगल अवसर है.... इस अवसर पर मेरे आँगन में... मेरे चैतन्य-मण्डप में पधारो! आपके पधारने से हमारे मण्डप की शोभा बढ़ जायेगी। अभी तक मैंने भूल से विभाव का आदर किया और आपका आदर छोड़ा.... अब मैं उस अपराध के निवारणार्थ विभाव का आदर छोड़कर स्वभाव का आदर करता हूँ.... इसलिये हे सिद्ध भगवन्तों! मेरे आँगन में पधारो..... अपने शुद्ध स्वरूप की लगन लगाकर मैं अपने आँगन में आपका पदार्पण कराता हूँ.... इसप्रकार साधक जीव अपने शुद्ध स्वभाव का आदर करके, उसके सेवन से सिद्धपद को साधता है। यही सिद्धपद का उपाय है। इसलिये आचार्य भगवान कहते हैं कि—

अरे जीव! अनंत काल से तूने राग की सेवा की.... अब ठहर जा... उस राग की सेवा छोड़कर चैतन्य की सेवा कर... चैतन्यस्वभाव में एकता करके उसकी सेवा करने से अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव होगा और तेरे आँगन में सिद्ध भगवान पधारेंगे.... अर्थात् तू स्वयं ही सिद्ध परमात्मा बन जायेगा।

आनन्द का समुद्र

ज्ञान ज्ञान को जाने, वहाँ आनन्दामृत-रस का समुद्र प्रगट होता है। आनन्द का प्रवाह निज-अवलोकन से प्रगट होता है; निर्विकल्परस में भेदभाव-विकल्प कुछ नहीं है; निर्विकल्परस ही ऐसा है कि वहाँ विकल्प नहीं होते। (परमात्म पुराण, पृष्ठ-८)

आचार्य भगवान मोक्ष का साधन बतलाते हैं

[मलकापुर में पूज्य श्री कानजीस्वामी का प्रवचन]

(ता० ३१-३-५९)

बंधन से छूटने का अथवा मोक्ष का साधन क्या है—वह बात चल रही है। जिज्ञासु शिष्य पूछता है कि प्रभो! इस आत्मा को रागादि के साथ जो बंधन है, वह दु:खदायक है; तो उस बंधन से छुटकारा कैसे हो सकता है? किस साधन द्वारा आत्मा और बंधन पृथक् होंगे? आचार्यदेव उसका उत्तर देते हैं कि—हे शिष्य! सुन! आत्मा, चैतन्य लक्षणवाला है और बंध, रागदिक लक्षणवाला है;—इसप्रकार दोनों को भिन्न-भिन्न लक्षण द्वारा पहिचानकर, प्रज्ञा को अन्तरोन्मुख करने से बंधनरहित—रागरहित ज्ञानस्वभावी आत्मा अनुभव में आता है और रागादि भिन्न हो जाते हैं। इसप्रकार प्रज्ञारूपी साधन द्वारा आत्मा और बंधन पृथक् हो जाते हैं।

रागादि परभावों के साथ एकता करके आत्मा अपने स्वभाव से च्युत हुआ, उसका नाम संसार है। बाह्य संयोगों में या शरीर में संसार नहीं है; संसार तो जीव की मलिन पर्याय है और मोक्ष भी बाह्य में नहीं है, वह तो जीव की पूर्ण शुद्ध पर्याय है। इसप्रकार संसार और मोक्ष जीव में हैं और उनका साधन भी जीव में ही है। मोक्ष का साधन बाह्य में नहीं है, उसीप्रकार संसार का कारण भी बाह्य में नहीं है।

मोक्ष का साधन अंतर में है, उसे भूलकर जीव ने बाह्य लक्ष से ही सब कुछ करके उसे मोक्ष का साधन माना है। जीव ने क्या-क्या किया?—तो कहते हैं कि—

यम नियम संयम आप कियो, पुनि त्याग विराग अथाग लयो;
वनवास लह्या सुख मौन रह्यो दृढ़ आसन पद्म लगाय दियो।
जप भेद जपे तप त्यों ही तपे उरसें ही उदासी लही सबसे,
सब शास्त्रन के नय धारि हिये, मत मंडन खंडन भेद लिये,
मन पौन निरोध स्वर बोध कियो, हठ योग प्रयोग सुतार भयो।
वह साधन बार अनंत कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो;
अब क्यों न विचारत है मन में, कछु और रहा उन साधन में?

अरे जीव! जरा विचार तो कर कि पूर्व अनंतकाल में इतने-इतने साधन कर चुकने पर भी

हित क्यों नहीं हुआ? हित का कौन-सा सच्चा साधन बाकी रह गया? आचार्यदेव कहते हैं कि—रागादि से भिन्न आत्मस्वरूप क्या वस्तु है, उसका यथार्थ ज्ञान (भेदज्ञान) तूने पूर्वकाल में कभी एक क्षण भी नहीं किया; और वह भेदज्ञान ही मोक्ष का साधन है।

यहाँ आचार्यदेव, जिज्ञासु शिष्य को वही साधन बतला रहे हैं कि—हे जीव! प्रज्ञाछैनी अर्थात् आत्मा और राग का भेदज्ञान ही मोक्ष का साधन है।

ऐसे भेदज्ञान के लिये प्रथम आत्मा की लगन लगना चाहिये। जिसप्रकार माता से बिछुड़ा हुआ बालक अपनी माँ का ही रटन करता है। कोई पूछे कि तेरा नाम क्या? तो कहता है कि—'मेरी माँ!' कोई मिठाई दे तो लेता नहीं है और कहता है कि 'मेरी माँ!' माता के अलावा उसे कोई दिखाई नहीं देता। उसीप्रकार चैतन्यस्वभाव से बिछुड़ हुए बालक जैसा शिष्य, अपने चैतन्यस्वभाव का अनुभव करने के लिये लालायित रहता है, उसी का रटन करता है। चैतन्यस्वभाव में लीन होकर वह जगत के विषय-कषायों से उदास हो गया है और श्रीगुरु के निकट जाकर विनय से पूछता है कि—प्रभो! मुझे अपने आत्मा की प्राप्ति किसप्रकार होगी? आत्मा के अनुभव का उपाय क्या? ऐसे जिज्ञासु शिष्य को आचार्यदेव ने यहाँ आत्मा के अनुभव का उपाय समझाया है।

भाई, तेरे आत्मा में वर्तमान विकार होने पर भी वह तेरे आत्मा का लक्षण नहीं है; तेरे आत्मा का लक्षण तो चैतन्य है। उस चैतन्य लक्षण द्वारा अपने आत्मा को लक्ष में लेकर अनुभव करने पर तुझे राग से भिन्न अपने आत्मा की प्रतीति और अतीन्द्रिय शांति का वेदन होगा। हम अपने आत्मा में ऐसा अनुभव करके तुझसे कहते हैं कि इस उपाय से अवश्य ही आत्मा और बंधन पृथक् हो जाते हैं तथा बंधनरहित शुद्ध आत्मा का अनुभव होता है। हमने इसी साधन द्वारा अपने आत्मा को बंधन से मुक्त अनुभव किया है और तू भी ऐसा ही कर! यह भगवती प्रज्ञा ही मोक्ष का साधन है। इसप्रकार आचार्य भगवान ने शिष्य को मोक्ष का साधन बतलाया।

सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा जानता है कि—'चेतनरूप अनूप अमूरत, सिद्ध समान सदा पद मेरो।' ऐसे आत्मस्वभाव में अभेद हुआ ज्ञान ही मोक्ष का कारण है। राग तो आत्मा के स्वभाव से बाह्य वस्तु है, वह आत्मा के मोक्ष का साधन नहीं है। स्वभावोन्मुख होने से जो ज्ञानकला प्रगट हुई, उससे शिवमार्ग सधता है और भवभ्रमण का अंत हो जाता है।

स्वकार्य में लीन हो!

[आचार्यदेव मुमुक्षु को स्वकार्य-साधना का उपदेश देते हैं]

नियमसार गाथा १५५ में आचार्यदेव कहते हैं कि—हे योगी! आत्मध्यानरूप निश्चय प्रतिक्रमणादि सत् क्रियाओं को जानकर तू निरन्तर स्वकार्यपरायण हो... जगत की निन्दा—प्रशंसा की ओर न देखकर, मौनपूर्वक निजकार्य को साधने में निरन्तर तत्पर हो।

यहाँ मुख्यतः मुनि को सम्बोधन करके उपदेश दिया है; तद्नुसार अन्य मुमुक्षु जीवों को भी वह उपदेश लागू होता है। हे मुमुक्षु! प्रथम तो तू शुद्ध निश्चय से प्रतिक्रमणादि क्रियाओं का स्वरूप जान! निश्चय से प्रतिक्रमणादि सत्क्रियाएँ आत्मध्यानस्वरूप हैं; आत्मा के ध्यान में उन सब क्रियाओं का समावेश हो जाता है; इसलिये तू अपने आत्मस्वरूप को जानकर उसके ध्यान में तत्पर हो! आत्मस्वरूप को जानकर उसका ध्यान ही तेरा स्वकार्य है; अपने इस स्वकार्य में ही तू लीन हो। दुनिया के अज्ञानी या मूर्ख जीव कदाचित् तेरी निन्दा करें, तथापि तू अपने निजकार्य से च्युत हुए बिना, निरन्तर स्वकार्य को साधने में ही तत्पर रहना; क्योंकि तेरा निजकार्य परम मोक्षसुख का कारण है। जगत् की निन्दा के भय से तू अपने स्वकार्य को न छोड़ना।

यहाँ इस उपदेश द्वारा यह बतलाया है कि मुमुक्षु की परिणति कैसी हो और वह किस प्रकार अपने कार्य की साधना करे। जो जीव सच्चा मुमुक्षु है और जिसे अपने आत्महित की साधना ही एक निजकार्य भासित हुआ है, वह मुमुक्षु स्वकार्य को साधने के लिये निरन्तर तत्पर रहता है; उसके हृदय में निरन्तर यही लगन होती है कि—समस्त बहिर्मुख भावों को छोड़कर, अंतर्मुख होकर मैं अपने स्वकार्य को साध लूँ। ऐसे मुमुक्षु को मौनव्रत पूर्वक निजकार्य साधना चाहिए, अर्थात् जगत में कोई निन्दा करता हो, तब भी उसे सुनकर खेदखिन्न न हो, तथा निजकार्य को न छोड़े। पूर्व अनंतानंत काल में कभी जिसे नहीं साध पाया, ऐसा अपूर्व आत्मकार्य अब मुझे साधना है; इसलिये जगत के लौकिक जीवों की भाँति वर्तन करना योग्य नहीं है। मेरा आवश्यक कार्य तो एक ही है कि अपने स्वरूप में सावधान रहूँ।—इसप्रकार निजकार्य में उत्साहित हुआ मुमुक्षु जीव, जगत की चिन्ता छोड़कर अपना हितकार्य साधता है। वह जानता है कि निजात्मा के आश्रय से सधनेवाला यह निजकार्य ही मुझे परम सुख देनेवाला है; इसलिये वह अपने निजकार्य से चलायमान नहीं होता।

जगत में अनेक प्रकार के जीव हैं; समस्त जीवों की एक ही विचारधारा हो जाये अथवा वे

अपने विचारों के अनुकूल हो जायें—ऐसा कभी नहीं होता। कोई जीव तीव्र अज्ञान के कारण सत् का विरोध या निन्दा भी करे.... तो उसके साथ वाद करना मुमुक्षु का कर्तव्य नहीं है; मुमुक्षु का कर्तव्य तो स्वात्मा के अवलम्बनरूप निजकार्य ही है। सत् की निन्दा अथवा विरोध करनेवालों से वाद-विवाद करके उन्हें पराजित कर दूँ या अन्य जीवों को समझा दूँ—ऐसी बाह्यवृत्ति के वेग को शांत करके, अंतर्मुख होकर निजात्मा के आश्रय से हितकार्य साधने में ही मुमुक्षु को निरंतर लीन रहना चाहिये, ऐसा आचार्यदेव का उपदेश है।

मुमुक्षु जीव को सहजतत्त्व की आराधना किसप्रकार करना चाहिये ? उसकी विधि बतलाते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि—**जिन-सर्वज्ञ वीतराग कथित परमसूत्र में प्रतिक्रमणादि की स्पष्ट परीक्षा करके मौनव्रत सहित योगी ने निजहितरूप कार्य को नित्य साधना (सू० १५५ नियमसार)**

जिसप्रकार कोई दरिद्री मनुष्य निधि प्राप्त कर ले तो वह दुनियाँ में ढँढ़ेरा नहीं पीटता, किन्तु अपनी जन्म-भूमि में जाकर गुप्त रीति से उसका उपभोग करता है; उसीप्रकार अनन्त काल से प्राप्त नहीं की हुई ऐसी अपूर्व सहज ज्ञाननिधि को श्रीगुरु के उपदेश द्वारा कोई आसन्न भव्य जीव प्राप्त कर ले तो वह दुनिया में ढँढेरा नहीं पीटता कि हमें ऐसी प्राप्ति हुई है; वह तो अंतरोन्मुख होकर अपने ज्ञान निधान का उपभोग करता है। इसप्रकार परजनों की अपेक्षा छोड़कर मुमुक्षु जीव अपने सहजतत्त्व की आराधना करता है। निजस्वरूप का संग छोड़कर, परजनों का संग करने से स्वात्मध्यान में विघ्न उपस्थित होता है, इसलिये ज्ञानी-धर्मात्मा उन परजनों का संग छोड़कर स्वात्मध्यान में तत्पर होते हैं और निजकार्य की निरंतर साधना करते हैं।

'अहा! हमारा परमानन्द हमें अपने अंतर में प्राप्त हुआ; श्रीगुरु के चरण कमल की उपासना से अपना आनन्द निधान हमें प्राप्त हुआ... अब हम अंतरोन्मुख होकर अपने आनन्द निधान का उपभोग करेंगे; दुनिया से हमें कुछ लेना नहीं है तथा दुनिया में किसी का बोझा हमारे ऊपर नहीं है'—इसप्रकार धर्मी जीव अव्यग्र एवं निर्भ्रान्तरूप से अपने आनन्द निधान का उपभोग करता हुआ उसकी रक्षा करता है और अपने सहजतत्त्व की आराधना को टिका रखता है। दुनिया की ओर का सहज वैराग्य तथा निजस्वरूप में लीनता धर्मी को निरंतर वर्तती है; वह बतलाकर आचार्यदेव ने उपदेश दिया है कि—

हे जीव तू स्वकार्य में लीन हो!

(—नियमसार, गाथा १५५-५६-५७ के प्रवचन से)

जामनगर (सौराष्ट्र) में भव्य पंचकल्याणक जिनबिम्ब

प्रतिष्ठा महामहोत्सव

परम प्रभावक पण्डित पूज्य सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के सद्उपदेश से श्री चुनीलाल हठीसिंह सेठ आदि... तथा ईस्ट अफ्रीका में व्यापारार्थ गये हुए श्री फूलचन्दभाई, श्री भगवानजी भाई आदि दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल द्वारा जामनगर में करीब दो लाख से अधिक खर्च से उत्तम और अन्तिम ढंग की (लेटेस्ट पद्धति से) कला से सुन्दर जिनमन्दिर तैयार हुआ है। [जामनगर शहर में ढाई लाख जनसंख्या है।]

तारीख १३-१-६१ पूज्य श्री कानजी स्वामी जामनगर शहर में पधारे उसके पहले इस उत्सव, प्रभावना, भक्ति के लिये ईस्ट अफ्रीका से मुमुक्षु बड़ी संख्या में आ पहुँचे थे। जामनगर के मुमुक्षुओं का अपूर्व उत्साह था, उन्होंने इस उत्सव के लिये सम्पूर्ण तैयारी कर रखी थी।

तारीख १३-१-६१ सबेरे पूज्य कानजी स्वामी का स्वागत बहुत ठाटबाट (शोभा) पूर्वक हुआ उसमें अनेक हजारों की संख्या थी।

उत्सव मण्डप के समीप विशाल सभा मण्डप में पूज्य कानजी स्वामी ने मांगलिक प्रवचन किया, फिर हमेशा दो दफे आपका प्रवचन होता था, सबेरे श्री समयसारजी शास्त्र-कर्ताकर्म अधिकार तथा दुपहर में पद्मनन्दी पंचविंशति में से दान अधिकार ऊपर प्रवचन था।

दिल्ली, जयपुर, अजमेर, उदयपुर, इन्दौर, खण्डवा, सनावद, भोपाल, उज्जैन, गुना, कोटा, कलकत्ता आदि उत्तर भारत से ३००, उपरान्त भाई-बहिनें आये थे, गुजरात, सौराष्ट्र, बम्बई से भी बड़ी संख्या में आये थे। सभी के लिये भोजन आदि की सुन्दर व्यवस्था करने में आई थी।

प्रतिष्ठाचार्य श्री नाथूलालजी शास्त्री (इन्दौर) द्वारा इस समय भी उत्तम प्रकार से श्री जिनेन्द्र पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का महान कार्य निर्विघ्नता से पूर्ण हुआ।

अजमेर से आये हुए डॉ० सौभाग्यमलजी आदि भजन मण्डली के भक्त कलाकारों ने छह दिन तक भक्ति, भक्ति सहित नृत्य गान आदि विविध कार्यक्रम द्वारा हार्दिक उत्साह बताया था।

जामनगर का जिनमन्दिर बहुत आकर्षक और विशाल है, आधुनिक पद्धति से बना होने से भारतवर्ष में से एक विशेष (खास) सुन्दर जिनमंदिर समझा जाये ऐसा है। उसकी उत्तम प्रकार से रचना करनेवाले दरबार सा० श्री अगरसिंहजी बड़े मशहूर कन्ट्राक्टर हैं। पू० कानजी स्वामी के

प्रवचन सुन करके आप भी बहुत प्रभावित हुए, आपने जिनमन्दिर के ऊपर बड़ा सुवर्ण कलश चढ़ाने में पाँच हजार रुपये देकर हृदय से भक्तिभाव प्रगट किया और शिखर पर कलश चढ़ाया।

जामनगर में श्वेताम्बर जैन भाइयों उपरान्त अनेक अन्य भाइयों की ओर से भी इस महोत्सव में अनेकविध सुविधा तथा सेवा प्राप्त हुई—यह सब पूज्य कानजी स्वामी का पुण्य प्रभाव ही है।

मण्डप की वेदी में जामनगर के तथा अन्य स्थलों के मिलकर ३१ जिन प्रतिमाजी थे। दीक्षा कल्याणक के समय पूज्य गुरुदेव समक्ष जामनगर के दो मुख्य भाइयों ने धर्मपत्नी सहित आजीवन ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा ली।

बम्बई से दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल के प्रमुख श्री मणिभाई के साथ १५२ उपरान्त सभ्य आये थे, बम्बई दिगम्बर जैन मन्दिर की तीसरी साल की प्रतिष्ठा तिथि महासुद ६ थी, उस दिन वे सब जुलूस के रूप में दर्शन करने के लिये आये और बम्बई में फिर से भी जिनेन्द्र पंचकल्याणक महोत्सव की भावना व्यक्त की। बम्बई मुमुक्षु मण्डल को बहुत उत्साह है, ऐसा स्पष्ट ज्ञात होता था।

गिरनारजी यात्रा संघ पू० गुरुदेव के साथ जूनागढ़ पहुँचे तब बम्बई दि० मुमुक्षु मण्डल की ओर से प्रीतभोज का १५०१), श्री खीमचनद जेठालाल सेठ की ओर से १५०१), श्री शान्तिलाल झोबालिया की ओर से १५०१), तथा पोरबन्दरवाले श्री भूराभाई के पुत्रों की ओर से १५००) यात्रा संघ की भोजन व्यवस्था में आया था।

जामनगर में उत्सव के मांगलिक कार्यक्रम ता० १७ से १९-१-६१ इन्द्रध्वज-ध्वजा आरोपण विधि, नांदि विधान, इन्द्रप्रतिष्ठा और जुलूस, जाप्य-जिनसहस्र नाम मण्डल विधान महापूजा, यागमंडल विधान महापूजा, गर्भ कल्याणक की पूर्व क्रिया, माता के सोलह स्वप्न आदि के भावप्रदर्शन, गर्भ कल्याणक, अजमेर भजन मण्डली का भक्ति कार्यक्रम।

ता० २०-१-६१ प्रतिष्ठा मण्डप में विधि नायक श्री पार्श्वनाथ भगवान के जन्म का भाव प्रदर्शन, मेरु पर्वत के ऊपर जन्माभिषेक के लिये ऐरावत हाथी के ऊपर भगवान का जुलूस, रास्ते में भजन मण्डली का खास आकर्षक कार्यक्रम होने से हरेक रास्ते पर असाधारण भीड़ लगी रहती थी। मेरु पर्वत पर जिनाभिषेक विधि और उत्सव के बाद प्रतिष्ठा मण्डप में इन्द्रों द्वारा नृत्य-भक्ति, पालना झूलन, श्री पार्श्वनाथ का वन विहार और तापस कमठ के भावों का प्रदर्शन।

तारीख २१-१-६१—भगवान के वैराग्य का भावप्रदर्शन, लोकान्तिक देवों का आगमन,

जिनदीक्षा के लिये भगवान की वनयात्रा तथा जुलूस और तपकल्याणक विधि, उस समय वैराग्य प्रेरक प्रवचन, रात्रि समय-पार्श्वनाथ भगवान के पूर्व भवों का भावप्रदर्शन तथा भक्ति।

तारीख २२-१-६१ विधिनायक मुनिराज श्री पार्श्वनाथ भगवान को आहारदान, पू० श्री कानजी स्वामी के पावन कर कमल द्वारा जिनप्रतिमाजी के ऊपर अंकन्यास विधि, केवलज्ञान कल्याणक, समवशरण रचना तथा दिव्यध्वनि समय का प्रवचन, रात्रि में भजनमण्डली का कार्यक्रम।

तारीख २३-१-६१ सबेरे जिनमन्दिर में श्री जी (भगवान) की विशाल प्रतिमाओं को ले जाते समय तथा वेदी में विराजमान करते समय और मन्दिर के शिखर पर कलश-ध्वजारोहण के समय उत्साह और दर्शकों की बेशुमार भीड़ थी। आनन्द से जय जयकार नाद गूंजते थे।

तारीख २४-१-६१ सबेरे ८.०० से ११.०० शान्ति यज्ञ विधि बहुत शान्तिपूर्वक हुई उसमें जाप में बैठे हुए १४ भाई तथा १६ इन्द्र इन्द्राणी उन सबके बीच अनेक अग्नि कुण्डों में केवलज्ञान ज्योति की महिमा पूर्वक शास्त्रीजी द्वारा सुमधुर मंचोच्चार-स्वाहा उच्चार सहित आहुति हुई। यह दृश्य भारी आकर्षक था।

प्रत्येक कार्यक्रम में दर्शकों की बड़ी संख्या उपस्थित होती थी।

पूज्य कानजी स्वामी का प्रवचन यही मुख्य आकर्षण होने से जिज्ञासुओं की बहुत बड़ी संख्या प्रवचन में (—व्याख्यान) व्याख्यान के समय देखने में आती थी।

दोपहर में खास ठाटबाट से बड़ी शोभा युक्त समारोह पूर्वक जिनेनद्र बिम्ब रथयात्रा थी। हाथी के ऊपर बड़ा धर्मध्वज लहराया था, उचित ढंग से शोभायमान पाटावाली बड़ी ऊँट गाड़ी में अजमेर भजन मण्डली का नृत्यगान भक्ति का कार्यक्रम था। अपूर्व उत्साहपूर्वक सारा शहर में रथयात्रा का विराट जुलूस था। यह सब विशेषता देख-देखकर जामनगर में आनन्दमय खलबली मची थी।

रात्रि समय ७ से ८ तक जिनमन्दिर में पू० बहिनों द्वारा भक्ति होने के बाद भजनमंडली द्वारा भक्ति हुई।

यह महान उत्सव चिरस्मरणीय रहेगा और इसके लिये सबको तथा जामनगर के जैन मुमुक्षु मण्डल को अत्यन्त धन्यवाद।

गिरनारजी यात्रा समाचार

पूज्य गुरुदेव ता० २६ से ता० २९-१-६१ संघ सहित गिरनारजी यात्रार्थ पधारे। इस शुभ प्रसंग में १२००, से अधिक संख्या में भाई-बहिनें आये थे। जूनागढ़ शहर में पू० गुरुदेव का भव्य स्वागत, दोपहर में टाउन हाल में जाहेर व्याख्यान (-प्रवचन), शाम को गिरनारजी सिद्धक्षेत्र की तलहटी में सब पहुँच गये। वहाँ रात्रि में ७.०० से ८.०० जिन मन्दिर में अजमेर भजन मण्डल द्वारा भक्ति का उत्साहदायक कार्यक्रम था।

ता० २७-१-६१ प्रातः समय तीर्थवंदना के लिये श्री कानजी स्वामी सबकी साथ में थे, यह यात्रा का विरल और भव्य प्रसंग होने से हजारों मुमुक्षु भक्तभक्ति की धुन सहित सबेरे ५.०० बजे रवाना हुये, ऊपर पहली टूंक पर दिगम्बर जिन मन्दिर में पू० स्वामीजी सहित वन्दना-पूजा करके भक्ति का कार्यक्रम शुरु हुआ। उसमें अजमेर भजन मण्डल द्वारा भक्तिरस की जमवट करनेवाली भक्ति थी, बाद दोपहर में सहस्त्राम्रवन—जहाँ भगवान श्री नेमिनाथ का दीक्षा (तप) कल्याणक तथा केवलज्ञान कल्याणक हुये थे, वहाँ पू० स्वामीजी संघ सहित आये।

सहस्त्राम्रवन में भगवान श्री नेमिनाथ प्रभु के चरणचिह्न हैं, उस परमात्मा की वीतरागता और उनका स्मरण पूर्वक बहुमान व्यक्त करने में प्रथम तो वंदन-पूजन हुआ बाद पू० कानजी स्वामी ने अपूर्व भक्ति कराई तथा वीतरागता के स्मरण रूप से संक्षेप में वर्णन किया।

यह प्रसंग-उत्तम अवसर-बहुत भव्य और धन्य घड़ी-धन्य भाग्य समान था।

सायं को दि० जैन मन्दिर के चौक में भक्ति थी उसमें सती राजुल तथा पिताजी का संवाद बहुत रोचक और वैराग्यमय होने से संवाद करनेवाले तथा सर्व श्रोताओं गद्‌गद् होते देखने में आते थे। ता० २८-१-६१ सबेरे गिरनारजी की पाँचवीं टूंक वंदनार्थ चले, रास्ते में अपूर्व उत्साहमय भक्ति द्वारा जय जयकार और भक्ति भजन करते-करते सर्व चलते थे।

पंचमी टूंक—भगवान श्री नेमिनाथ प्रभु की निर्वाण भूमि है, वहाँ इन्द्रों द्वारा स्थापित श्री नेमिप्रभु के चरणचिह्न हैं। उसकी परम हर्ष सहित वंदना-पूजा होने बाद गुरुदेव ने 'अपूर्व... अवसर... एवो क्यारे आवशे, क्यारे थइशुं बाह्यांतर निर्ग्रंथ जो' ये पद एकाग्रता पूर्वक बोलकर के आपने जो सिद्धिपद को पाये हैं, ऐसे वीतराग भगवान का स्मरण का हेतु समझाकर वीतरागी मोक्षमार्ग और मोक्षपद का [संक्षेप में] स्वरूप और माहात्म्य दर्शाया। बाद पू० बहिन श्री बहिनों ने

भक्ति की थी। बाद गुरुदेव के साथ जय जयकार सहित भक्ति के पद गाते गाते प्रथम टूंक पर आये, वहाँ श्वेताम्बर जैन पेढी के मुख्य मुनीमजी (श्री इन्स्पेक्टर साहब) की खास विनती से दोपहर में गुरुदेव का प्रवचन हुआ। बाद में इन्स्पेक्टर श्री भानुभाई ने गद्‌गद् होकर कहा कि आपके चरणों के समीप ही मेरा जन्म हो और मेरा जीवन सफल बने, ऐसा कहकर प्रेम बताया था। [विशेष में—पहाड़ के ऊपर राजुल की गुफा से दक्षिण की ओर करीब ६०० कदम दूर चन्द्रगुफा नामक सुन्दर गुफा है, उसमें बहुत प्राचीन चरणचिह्न हैं (जो दिगम्बर जैन आम्नायानुसार हैं) बहुत भाई वहाँ जाकर प्रसन्नता व्यक्त करते थे।]

ता० २८-१-६१ दोपहर बाद पूज्य स्वामीजी के साथ जयनाद पूर्वक भक्ति के पद गाते-गाते परम हर्ष प्रगट करते-करते नीचे धर्मशाला में ठहरे। वहाँ रात्रि को जिन मन्दिर में भक्ति हुई।

ता० २९-१-६१ जूनागढ़ शहर में आये, यात्रा की सर्व प्रकार सुन्दर व्यवस्था में बांकानेर, मोरबी, बुम्बई और सोनगढ़ के मुमुक्षु मंडल का अधिक हिस्सा है, की हुई सेवा सराहने योग्य है। जूनागढ़ और दिगम्बर तथा श्वेताम्बर जैन पेढ़ी वालों ने अच्छा सहयोग दिया, यात्रा संघ की बहुत सेवा की उसमें जैन वि० श्रीमाली नूतन मित्र मण्डल ने भी बहुत सुन्दर सेवा दी है, उन सभी को धन्यवाद।

ता० २९-१-६१ जूनागढ़ शहर में टाउनहोल में पूज्य कानजी स्वामी का जाहिर व्याख्यान (प्रवचन) हुआ, श्रोता समूह बड़ी संख्या में आये और सब जिनेन्द्र रथयात्रा में शामिल हुये।

महान तीर्थ यात्रा के उत्सव मनाने के लिये शहर में जिनेन्द्ररथयात्रा का विशाल जुलूस निकलवाया, समवसरण जैसी वेदी में श्री जी (भगवान) को विराजमान करने में आये थे, दूसरे रथ में शास्त्रजी रखा था, यहाँ पर भी अजमेर भजन मण्डली के सभ्यों ने अथक प्रेम, उत्साह सहित भक्ति द्वारा अपनी भक्ति से भरपूर कार्यक्रम बनाया था, उसे देखकर रास्ते में आनन्दमय क्षोभ दिख रहा था, भारी उत्साह प्रगट कर रहे थे। इसप्रकार धर्म प्रभावना के प्रणेता पू० कानजी स्वामी के पुनीत प्रताप से धर्म प्रभावनामय यह अपूर्व तीर्थयात्रा सभी के आनन्दमय थी और वह चिरस्मरणीय रहेगी।

—ब्र० गुलाबचन्द जैन

ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा

जामनगर में जिनेन्द्र पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में भगवान के दीक्षा कल्याणक के समय जामनगर के श्री नवलचन्द छगनलाल मेहता तथा श्री रतीलालभाई अमरचन्द बाबरिया दोनों भाईयों ने सजोड़ा आजीवन ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा पू० गुरुदेव के समक्ष अंगीकार की। धन्यवाद।

हंस

समस्त मुनिजनों के हृदय कमल का हंस ऐसा जो यह शाश्वत, केवलज्ञान की मूर्तिरूप, सकल-विमल दृष्टिमय, शाश्वत आनन्दरूप, सहज परमचैतन्य-शक्तिमय परमात्मा सदा जयवंत है। *(नियमसार, कलश १२८)*

सम्यक्त्वी-हंस

आत्मा के चैतन्य-सरोवर के शांत जल में केलि करनेवाले सम्यक्त्वी-हंस को चैतन्य के शांतरस के अतिरिक्त बाह्य में पुण्य-पाप की वृत्ति की अथवा इन्द्रिय विषयों की रुचि उड़ गई है; चैतन्य के शांत-आनन्द रस का ऐसा निर्णय (वेदनसहित) हो गया है कि अन्य किसी रस के वेदन में उस स्वप्न में भी सुखानुभूति नहीं होती। ऐसा सम्यक्त्वी-हंस निरंतर शांतरस के सरोवर में केलि करता है।

उपदेशामृत

(१) भेदज्ञान का कार्य यह है कि चैतन्यस्वभाव में वर्ते और विकार से निवर्तन करे; यदि विकार से निवृत्त न हो अर्थात् उससे विमुख होकर स्वभावोन्मुख न हो तो उस जीव को स्वभाव और विकार का भेदज्ञान हुआ ही नहीं है।

(२) जीव ने पांडित्य पूर्वक शास्त्राध्ययन किया, किन्तु स्वभाव और विभाव के बीच का यथार्थ भेदज्ञान कभी एक क्षण भी प्रगट नहीं किया। भेदज्ञान होने पर तो आत्मा की परिणति विकार से विमुख होकर स्वभावोन्मुख हो जाती है।

(३) अरे, यह बात तो ऐसे जीवों के लिये है जिन्हें चार गति के भ्रमण का त्रास लग रहा हो और आत्मा को समझने की अभिलाषा हो। जिसे भव का त्रास लगा हो और चैतन्य की शांति चाहता हो, ऐसे आत्मार्थी जीव की समझ में ही यह बात आती है।

(४) अभी तो जिसे पुण्य में और उसके फल में सुख का भास होता हो, जगत के बाह्य कार्य मुझसे होते हैं—ऐसी कर्तृत्व बुद्धि का पोषण हो रहा हो, उस जीव को अंतर-स्वभाव की यह बात कहाँ से गले उतरेगी ?—किन्तु अंतर में यह बात समझे बिना भवभ्रमण के दुःख से छुटकारा नहीं हो सकता।

(५) भाई, अंतर में आत्मा की महिमा लाकर, रुचिपूर्वक यह बात समझने योग्य है। ऐसा मनुष्य भव कहीं बारम्बार प्राप्त नहीं होता। इस मनुष्य भव में भी यदि आत्महित की दरकार नहीं की तो अवतार पूरा होने पर तुझे कहाँ ठौर मिलेगा ? अंतर में आत्मस्वभाव को समझे बिना जीव को बाह्य में कोई शरणभूत नहीं हो सकता।

(६) ऐसे मनुष्यभव में आत्मा की दरकार करना चाहिये कि अरे ! मेरा आत्मा इस संसार के जन्म-मरण से कैसे छूटेगा ?.... आत्मा को समझने का ऐसा यथार्थ उपाय करूँ जिससे अल्पकाल में मेरा आत्मा इस जन्म मरण से छूटकर मुक्ति प्राप्त करले।

(७) अंतर में आत्मा की सच्ची जिज्ञासा प्रगट करके जो समझना चाहे, उसे यथार्थ समझ तथा सम्यग्दर्शन हुए बिना नहीं रहता।

(८) एक बार भी जिसने सम्यग्दर्शनरूपी छैनी द्वारा मोहग्रन्थि को छेद डाला, उसके संसार का मूल छिद गया और उसके आत्मा में मोक्ष का बीजारोपण हो गया।

(९) जिसप्रकार मूल के छिदने से वृक्ष के डाल-पत्ते अल्पकाल में सूख जाते हैं, उसीप्रकार सम्यग्दर्शन द्वारा संसार का मूल छिद जाने से अल्पकाल में ही रागादि का सर्वथा अभाव होकर जीव मुक्ति प्राप्त करता है।

(१०) इसप्रकार सम्यग्दर्शन द्वारा ही जीव बंधन से छूटकर मुक्ति प्राप्त करता है; इसलिये सम्यग्दर्शन ही मोक्ष का मूल उपाय है—ऐसा जानकर मोक्षार्थी जीवों को उसका यत्न करने योग्य है। सुखी होना हो तो सर्व प्रथम यह ही प्राप्त करने योग्य है।

जीव को ढूँढ़ें कहाँ ?

प्रश्न—आँख खोलकर बाहर देखने से जड़ दिखाई देता है और आँख बन्द करने पर अन्धकार.... तो फिर जीव को ढूँढ़ें कहाँ ?

उत्तर—भाई, यदि तू जीव को जानना चाहता हो तो पहले उसके स्वरूप का निर्णय कर.... कि.... जीव ज्ञानस्वरूप है... अरूपी है... अरूपी होने से वह आँख द्वारा दिखाई नहीं देता। इसलिये आँख वह जीव नहीं है तथा जीव को जानने का साधन भी नहीं है। आँख तो जड़वस्तु है... वह किसी को जानने का कार्य नहीं करती। आँख जब निष्क्रिय हो अथवा बन्द हो, तब भी अंतर में जानने की क्रिया तो हो ही रही है; इसलिये वह जानने की क्रिया आँख से भिन्न है और उस क्रिया को करनेवाला भी आँख से भिन्न है... वह है जीव। इसलिये तू आँख द्वारा जीव को ढूँढ़ने का प्रयत्न करेगा तो वह कभी तुझे नहीं मिल सकता... आँख में रहने पर भी वह आँख द्वारा प्राप्त नहीं हो सकेगा... उसे ज्ञान क्रिया में ढूँढ़.... वहीं वह रहता है।

जो स्वयं आँख से पृथक् है तथा जो आँख का विषय नहीं है, उसे आँख द्वारा ढूँढ़ने का प्रयत्न करना, वह तो मूल प्रयत्न में ही भूल है। कैसी भूल ?—कि—जिसप्रकार कोई मुर्दे को जीवित मानकर उसके साथ बातें करने का व्यर्थ प्रयत्न करे। उसीप्रकार यह आँख तो मुर्दे की भाँति अचेतन है, तथापि उसे जीवित-चेतन मानकर उससे जानने का कार्य कराना चाहता है... ! भाई, तू ज्ञानचक्षु खोलकर आँख से भिन्न अपने आत्मा को देख.... फिर आँख खुली हो या बन्द... तुझे अपना जड़ से भिन्न चैतन्यप्रकाश दिखाई देगा.... जिसे देखते ही तुझे आनन्द की प्राप्ति होगी।

आत्मा को दिखलाते क्यों नहीं ?

प्रश्न—आप शरीर और आत्मा को भिन्न कहते हैं; यदि वे भिन्न हैं तो फिर आत्मा को निकाल कर क्यों नहीं दिखलाते ?

उत्तर—भाई ! सिद्ध भगवान, आत्मा को शरीर और विभाव से पृथक् करके स्पष्ट दिखला रहे हैं.... तू न देखे तो इसमें किसी का क्या दोष ? सिद्धभगवान तो बतला रहे हैं कि—'देखो, यह शरीर से भिन्न आत्मा !—तुम्हारा आत्मा भी ऐसा ही है'; किन्तु ऐसे आत्मा को देखने के लिये आँखें तो देखनेवाले की अपनी ही होना चाहिये न ! बाहर की जड़ आँखों से आत्मा दृष्टिगोचर नहीं होगा; आत्मा को देखने के लिये तो ज्ञानचक्षुओं की आवश्यकता होगी—अर्थात् पहले उसका ज्ञान करना होगा।

जिसप्रकार कोई आँखवाला मनुष्य हिमालय पर्वत को देखकर हर्ष पूर्वक कहे कि—देखो, यहाँ हिमालय कितना सुन्दर दिखाई देता है ! उस समय किसी अंध व्यक्ति को हिमालय दिखाई न दे और कहे कि यदि तुम हिमालय को देख रहे हो तो मुझे क्यों नहीं दिखलाते ?—'किन्तु भाई ! हिमालय तो तेरी आँखों के सामने खड़ा है, तू आँखें खोलकर देखे, तभी दिखाई देगा न ?' उसीप्रकार शरीर से भिन्न चिदानन्द आत्मा अपने पास ही है और ज्ञानी अंतर में अनुभव करके उसे दिखा रहे हैं.... किन्तु जीव स्वयं अपने ज्ञानचक्षु खोले तब दिखाई दे न !! भेदज्ञान दृष्टि से देखने पर इस समय भी जीव और शरीर भिन्न ही हैं; दोनों के लक्षण भिन्न हैं तथा दोनों भिन्न-भिन्नरूप से ही अपना कार्य कर रहे हैं।

नया प्रकाशन

श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव कृत

श्री नियमसारजी

(सेठी दि० जैन ग्रन्थमाला से प्रकाशित)

महान आध्यात्मिक भगवत शास्त्र, संस्कृत टीका सहित, जिसकी तत्त्वज्ञान के जिज्ञासुओं द्वारा काफी जोरों से माँग है, पूर्ण रूप से संशोधित, यह ग्रन्थ महान पवित्र तत्त्वज्ञान की अपूर्व निधि समान है। पृष्ठ संख्या ४१५ बड़े साइज में, कपड़े की सुन्दर मजबूत जिल्द मूल्य ५.००) मात्र, पोस्टेज अलग। थोक लेने पर कमीशन २५) सैं० देंगे। जिज्ञासुगण शीघ्र आर्डर भेजें।

मिलने का पता —

श्री दि० जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट

पो० सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

श्री जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तरमाला

प्रथम भाग (तीसरा संस्करण)

छपकर तैयार है, जिन्हें चाहिये वे शीघ्र आर्डर भेजकर मंगवा लेवें। मूल्य ६० न. पैसे।

★

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व
लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

अवश्य स्वाध्याय करें

पंचास्तिकाय	४ ॥)	ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	२ ॥)
मूल में भूल	।।।)	मोक्षशास्त्र बड़ी टीका सजिल्द	५)
श्री मुक्तिमार्ग	॥=)	सम्यग्दर्शन (दूसरी आवृत्ति)	१ ॥=
श्री अनुभवप्रकाश	॥)	द्वादशानुप्रेक्षा (स्वामि कार्तिकेयानुप्रेक्षा)	२)
श्री पंचमेरु आदि पूजासंग्रह	।।।)	जैन तीर्थ पूजा पाठ संग्रह कपड़े की जिल्द	१ ।=)
समयसार प्रवचन भाग २	५ ।)		
समयसार प्रवचन भाग ३	४ ॥)	भेदविज्ञानसार	२)
प्रवचनसार	५)	अध्यात्मपाठसंग्रह	५)
अष्टपाहुड़	३)	समाधितन्त्र	२ ।=
चिद्विलास	१=)	निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	=)
मोक्षमार्ग–प्रकाशक की किरणें प्र०	१ ।=)	स्तोत्रत्रयी	॥)
द्वितीय भाग	२)	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	=)
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला प्र०	॥–)	'आत्मधर्म मासिक' लवाजम–	३)
द्वितीय भाग	॥–)	आत्मधर्म फाइलें १–३–५–६–७–८–१०–११–१२–१३ वर्ष	३ ।।।)
तृतीय भाग	॥–)		
जैन बालपोथी	।)	शासन प्रभाव	=)

[डाकव्यय अतिरिक्त]

मिलने का पता—
श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।